नियमसार, श्लोक १३६। शलेक है।

क्वचिल्लसति निर्मलं क्वचन निर्मलानिर्मलं,
क्वचित्पुन-रनिर्मलं गहन-मेव-मज्ञस्य यत्।
तदेव निज-बोध-दीप-निहताघ-भूछायकं,
सतां हृदयपद्मसद्मनि च सन्स्थितं निश्चलम्।।१३६।।

यह शैली समयसार की है न? पीछे है न! यह शैली ली है।

क्या कहते हैं? क्वचित् यह आत्मा निर्मल दिखता है। आत्मा शुद्ध चैतन्य आनन्द

है, चैतन्यरत्न है, चैतन्य अन्तर की शक्ति के स्वभाव का बड़ा समुद्र है। उसे देखने पर वह निर्मल दिखता है। साधकजीव की बात है। अन्तर में चैतन्यस्वरूप अनन्तगुणमणि रत्न की खान। अनन्तगुणमणि रत्न की खान आत्मा है। आहाहा! उसे अन्तर में देखने पर निर्मल दिखता है। अन्तर में उपयोग जाने पर अकेला निर्मल दिखता है।

कभी निर्मल तथा अनिर्मल दिखायी देता है,... कभी उपयोग जब अन्तर में नहीं, तब निर्मल भी है और रागादि दिखते हैं, मलिन भी दिखता है। समझ में आया? यशपालजी! फिर से, फिर से। सूक्ष्म है न? ऐसा कि आत्मा है तो शुद्ध चैतन्य आनन्दकन्द। अनन्त-अनन्तगुणमणि रत्न की खान। ऐसा जो शुद्ध आत्मा जहाँ सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान में ज्ञात होता है। धर्म की पहली शुरुआत में जहाँ ज्ञात होता है, तब निर्मल ज्ञात होता है, परन्तु जब वहाँ से उपयोग हट जाता है, तब निर्मल भी ज्ञात होता है और जरा राग होता है तो अनिर्मल भी ज्ञात होता है। समझ में आया?

उपयोग जब अन्दर में नहीं, तथापि शुद्धता प्रगटी है। शुद्ध चैतन्य साधक की बात है। सम्यग्दृष्टि साधक जीव को आत्मा कैसा, किस प्रकार भासित होता है? उसकी बात है। आहाहा! **जो कभी निर्मल दिखायी देता है,...** अर्थात् उपयोग अन्दर में जाने पर। 'एकत्वसप्तति' है न? पद्मनन्दिपंचविंशति में, उसमें ऐसा लिया है कि समता। एकत्वसप्तति। निर्मल अर्थात् साम्य, स्वास्थ, चित्त निरोध, शुद्धोपयोग—यह एक ही बात है। समझ में आया? समता कहो, वीतरागता कहो, आत्मा अन्दर उपयोग में आवे, तब वीतरागता होती है। अकेला राग लक्ष्य में रहे, तब तक उसे वीतरागता नहीं होती। जब तक दया, दान, आदि का राग रहे, अकेला राग लक्ष्य में रहे, तब तक अन्तर दृष्टि नहीं जाती।

इसलिए उसकी दृष्टि छोड़कर, अन्दर में उपयोग जाता है, तब ज्ञान-आनन्द निर्मल दिखता है और उपयोग उसमें से हटकर बाहर आता है, तब निर्मल भी है। वहाँ उपयोग नहीं है, इसलिए निर्मल भी है और मलिन भी राग है, वह दिखता है। निश्चय भी है और व्यवहार भी दिखता है। समझ में आया? आहाहा!

कभी निर्मल तथा अनिर्मल दिखायी देता है,... आहाहा! यह तो फिर ठीक। **तथा कभी अनिर्मल दिखायी देता है...** लक्ष्य उसमें से बराबर न हो। साधक है, तथापि राग और पुण्य के परिणाम हों, वही लक्ष्य में रहे, तो अकेला अनिर्मल दिखता है। दृष्टि में शुद्ध

है तो भी राग पर लक्ष्य आता है, तो अनिर्मल दिखता है। अरे रे! धर्म की ऐसी बातें!

मुमुक्षु : व्यंजनपर्याय है।

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यंजन-फ्यंजन की यहाँ बात नहीं।

यहाँ तो राग और निर्मलता दो की बात है। आत्मा अन्दर शुद्धस्वरूप है, ऐसी दृष्टि है, तथापि बाहर आया और अकेले राग के ऊपर लक्ष्य रहा। वह उपयोग में नहीं रहा। लक्ष्य में राग आया, तब अनिर्मल दिखता है। वस्तुदृष्टि तो है। यह बात तो साधक जीव की है। आहाहा! विशेष फिर से देखना। कि यह आत्मा जो अन्दर है, वह तो एकदम इस देह के रजकण से भिन्न, कर्म के परमाणु से भिन्न और पुण्य तथा पाप के शुभ-अशुभभाव, दया, दान, व्रत, भक्ति के शुभभाव से भी अन्दर वह भिन्न चीज़ है क्योंकि दया, दान, व्रत के परिणाम, वह पुण्यतत्त्व है। आत्मा तो ज्ञायकतत्त्व शुद्ध चैतन्यरत्न है। आहाहा! अर्थात् उस शुद्ध चैतन्यरत्न को जिसने देखा, शुद्धोपयोग में जिसने देखा, उसे आत्मा अकेला निर्मल दिखता है। उपयोग वहाँ से हट जाता है, तब निर्मल और अनिर्मल दोनों दिखता है और अकेले राग के ऊपर लक्ष्य रहता है। दृष्टि वहाँ है, परन्तु उसे मानो राग मलिन हो,-ऐसा दिखे, तब अनिर्मल दिखता है। है ?

कभी अनिर्मल दिखायी देता है और इससे... इस कारण से... आहाहा! भगवान पूरा पड़ा रहा और सब बाहर की बातें हो गयी। दूसरे के साथ जोड़ दी। आत्मा कौन है, इसकी कुछ खबर नहीं होती और करो सामायिक, करो प्रौषध, करो प्रतिक्रमण। (सब) एक रहित शून्य है। आहाहा! यहाँ तो कहते हैं कि आत्मा तो मुख्य वस्तु है। पुण्य, पाप, आस्रव सब तत्त्व हैं, परन्तु उनका वह जाननेवाला है, करनेवाला नहीं, मेरा माननेवाला नहीं, परन्तु उनका जाननेवाला है परन्तु वह जाननेवाला कब हो ? कि स्वयं अपने को अनुभव करे और जाने, तब उनका जाननेवाला होता है। आहाहा!

चैतन्यस्वरूप आत्मा भगवान पूर्णानन्द, वह चैतन्यरत्न ही सर्वोत्कृष्ट तीन लोक का नाथ, तीन लोक में उसके अतिरिक्त कोई बड़ी उत्कृष्ट चीज़ नहीं है। आहाहा! ऐसा अन्दर भगवान विराजमान है। उसकी दृष्टि होने पर, सम्यग्दृष्टि होने पर वह अति निर्मल है, वह दिखायी देता है और बाहर आने पर अति निर्मल है, वह तो है, परन्तु जरा राग के ऊपर

लक्ष्य जाने पर भक्ति, पूजा आदि, तब अनिर्मल दिखायी देता है और कभी अकेला अनिर्मल दिखायी देता है। वह तो निर्मल और अनिर्मल दोनों साथ दिखायी देते हैं। दूसरे बोल में दोनों साथ में दिखायी देते हैं। पहले बोल में एक दिखता है, दूसरे बोल में दो साथ दिखते हैं। निर्मल शुद्ध चैतन्य और राग दोनों इकट्ठे। तथा तीसरे बोल में अति राग का लक्ष्य लिया। अति अनिर्मल दिखता है राग। आहाहा!

समकिती को भी लड़ाई आदि में चढ़ना पड़ता है। भरत चक्रवर्ती आदि, बाहुबली, दोनों भाईयों ने युद्ध किया। समकिती थे, आत्मज्ञानी थे। जब राग के ऊपर लक्ष्य जाता है, तब मैल हो, ऐसा दिखता है, तथापि वस्तुदृष्टि है। आत्मा दृष्टि में है, परन्तु उपयोग में मानो अकेला मलिन है, ऐसा दिखता है। आहाहा! अहो! **और इससे...** इस कारण से **अज्ञानी के लिये जो गहन है,...** अज्ञानी को आत्मा समझना बहुत गहन है, बापू! आहाहा! अनन्त बार मुनिपना लिया, साधु अनन्त बार हुआ, पंच महाव्रत अनन्त बार पालन किये परन्तु वह तो सब राग की क्रिया है। वह कोई आत्मा का ज्ञान नहीं है। आहाहा! भारी कठिन बातें।

इसलिए कहते हैं कि ऐसी क्रिया में भी यह वस्तु सम्यग्दर्शन में इस प्रकार भासित हो, वह अज्ञानी को गहन लगती है। **इसलिए जो गहन है,...** आहाहा! स्वयं तो निर्मलानन्द का नाथ प्रभु है। पूर्णानन्द का नाथ अन्दर चैतन्य हीरा है। जैसे परमात्मा वीतरागपर्याय से प्रगट हुए—अरिहन्त वीतराग, वैसा ही आत्मा वीतरागपना है, उसमें से वीतरागता आयी है। वह आत्मा वीतरागस्वरूप ही है। स्वास्थ्यस्वरूप ही है। स्वास्थ्य अर्थात् यह नहीं पूछते? स्वास्थ्य है? निरोगस्वरूप ही है। उसमें राग का रोग है नहीं। आहाहा! यहाँ पूछते हैं न? स्वास्थ्य तो ठीक है? शरीर का स्वास्थ्य, धूल का। यह तो धूल है। उसके स्वास्थ्य को पूछते हैं, परन्तु आत्मा के स्वास्थ्य को... स्वास्थ्य अर्थात् स्व में टिके रहना। आनन्दमूर्ति भगवानस्वरूप है, उसमें टिके रहना, इसका नाम स्वास्थ्य है, इसका नाम शुद्धोपयोग है, इसका नाम समता है, इसका नाम चित्त का पुण्य-पाप से निरोध है। आहाहा! अब ऐसी बातें।

वह तो कैसा सीधे यदि एक घण्टे जाए, सामायिक करके णमो अरिहंताणं, तिकखुतो, इच्छामि पडिकम्मणा, तस्सूतरी इत्यादि... आठ पाठ पढ़ा, सामायिक हो गयी। एक घण्टे बैठा। सामायिक कर आये। धूल में भी सामायिक नहीं है। सामायिक व्यवहार से भी नहीं

और उसमें निश्चय तो कहाँ था ही वह। यहाँ तो कहते हैं कि निश्चय हो, उसे व्यवहार मलिनता राग, व्यवहार विकल्प दिखता है, होता है। समझ में आया? आहाहा! अरे! यह चीज़ ऐसी है, प्रभु! ऐसा कहते हैं। यह जिनेश्वरदेव का कथन है। उसे सन्त प्रसिद्ध करते हैं। प्रभु अन्दर चैतन्यरत्न हीरा पड़ा है न! आहाहा! तीन लोक में, तीन काल में इसके अतिरिक्त कोई बड़ी चीज़ नहीं है। आहाहा! इसके अतिरिक्त इसके जैसी बड़ी—सिद्ध कहो, परमात्मा कहो, वह अपनी चीज़ है, वह तो स्वयं है, इतना ही है। आहाहा!

यहाँ तो अभी दुकान के पाप के धन्धे के कारण निवृत्त नहीं होता। शुभभाव में नवकार गिनना, स्मरण करना, परमात्मा की पूजा-भक्ति, वह भी शुभभाव है; धर्म नहीं। वह पुण्य करने को निवृत्त नहीं है, वहाँ धर्म तो कहाँ था? आहाहा! सवेरे तुम कहाँ बैठे थे? आगे बैठे थे। समझ में आया? आहाहा! सर्वज्ञ भगवान ने कहा हुआ तत्त्व, सन्त-मुनिवर जगत को प्रसिद्ध करते हैं। मुनिवर ऐसा कहते हैं, प्रभु! तू अन्दर कैसा है? आहाहा! अति निर्मल है। है न? **कभी निर्मल दिखायी देता है...** इसका अर्थ ही अति निर्मल भगवान पूर्णानन्द।

कभी निर्मल तथा अनिर्मल दिखायी देता है,... परन्तु देखे उसे न! जो आत्मा को देखता ही नहीं, उसे दो भेद कहाँ से आये? आहाहा! समझ में आया? कठिन बात है, प्रभु! प्रभु का मार्ग कोई अलौकिक है। अभी तो बिगाड़कर फेरफार करके अन्यमति जैसा कर डाला है। जैनधर्म को अन्यधर्म जैसा कर डाला है। आहाहा! बाहर के क्रियाकाण्ड वह स्थूल। राग क्रिया को धर्म मनवाकर बैठे हैं। यह तो वीतराग। वीतराग धर्म वीतरागपर्याय से धर्म होता है। आहाहा! यह वीतरागस्वरूप ही भगवान है। यह भगवान आत्मा वीतराग की मूर्ति है। उसे देखकर वीतरागता ही प्रगट होती है परन्तु उसमें स्थिर नहीं हो सके, तब अनिर्मल-राग भी जरा आता है और किसी समय उस राग का मुख्यपना लक्ष्य में आवे तो अनिर्मल दिखता है।

अरे! ऐसी आत्मा की चीज़, भगवान त्रिलोकनाथ जिनेश्वरदेव परमेश्वर तीर्थंकर भगवान विराजते हैं। महाविदेह में अभी विराजते हैं, यह उनकी वाणी है। सीमन्धर भगवान समवसरण में विराजते हैं। पाँच सौ धनुष का देह है, करोड़ पूर्व का आयुष्य है। एक पूर्व में सत्तर लाख छप्पन हजार करोड़ वर्ष व्यतीत हो जाते हैं। ऐसे-ऐसे करोड़ पूर्व का आयुष्य

है। समवसरण में वर्तमान मनुष्यरूप से विराजते हैं। उनके पास ये कुन्दकुन्दाचार्य गये थे। विक्रम संवत् ४९। आठ दिन वहाँ रहे थे। वहाँ से आकर यह बनाया है। यहाँ लोग नहीं कहते, इसका पिता बाहर गया हो तो, बापू! मेरे लिये तुम क्या लाये? कोई घड़ी लाये? या अमुक लाये? पूछते हैं न? कहते हैं कि भगवान के पास से आप क्या लाये प्रभु? आहाहा! कि देख, यह लाये, सुन! आहाहा!

इससे अज्ञानी के लिये जो गहन है, वही निजज्ञानरूपी दीपक... आहाहा! दूसरा सब नहीं। निजज्ञानरूपी दीपक अन्दर निज दीपक भगवान चैतन्यसूर्य, चैतन्यचन्द्र, शीतलता से भरपूर... आहाहा! आकाश में बादल होने पर भी आकाश में बादलों का चित्राम नहीं होता। इसी प्रकार आत्मा में राग और शरीर का चित्राम नहीं होता। उस आकाश की भाँति निर्मलानन्द प्रभु विराजता है। आहाहा! ऐसा आत्मा जँचे किस प्रकार? अभी जहाँ दिन के दो-पाँच-दस हजार पैदा होते हों, हमेशा पाँच हजार, दस हजार (पैदा होते हों) वहाँ तो प्याला फट गया होता है (अभिमान में आ जाता है)। आहाहा! हमारे यह आमदनी है, इतनी यह आमदनी है। आहाहा! प्रभु! किसकी आमदनी? सब खोट की आमदनी है। खोट-खोट। आहाहा!

अन्दर चैतन्यरत्न भगवान जो गहन है, उसे तू देख। अज्ञानी को गहन लगेगा कि यह क्या? निर्मल और अनिर्मल दोनों! निर्मल होवे तो अनिर्मल नहीं और अनिर्मल होवे तो निर्मल नहीं। सुन, भाई! वस्तु की दृष्टि हुई है, अनुभव हुआ है, उतना निर्मल है और पूर्ण वीतरागता नहीं है, इसलिए बीच में पूजा, भक्ति, दान, दया के शुभभाव आते हैं, उन्हें जानता है परन्तु वे मलिन हैं, ऐसा जानता है। आहाहा! ऐसी बात है, प्रभु! जगत को निवृत्ति-फुरसत भी नहीं मिलती। स्त्री-पुत्र के कारण फुरसत नहीं मिलती और धन्धा के कारण फुरसत नहीं मिलती, उसमें घुस जाता है। आहाहा! पूरे दिन अज्ञान की मजदूरी करता है। मिथ्यात्व की मजदूरी। यह मेरे... यह मेरे... यह मेरे... यह मिथ्यात्व है। वे तेरे नहीं हैं, उन्हें तेरे मानता है, यह तो महामिथ्यात्व है। आहाहा! मिथ्यात्व की मजदूरी में इसे यह कहना, तो प्रभु कहते हैं कि गहन है, बापू! तेरी चीज़, भाई! गम्भीर है, गहन है, गहरी-गहरी... आहाहा! जहाँ गुण का गोदाम है, जैसे बाहर में बड़े गोदाम होते हैं न? उसी प्रकार यह गुण का बड़ा गोदाम अन्दर भगवान है। भले शरीरप्रमाण हो, परन्तु राग को तो यह

द्रव्यस्वभाव स्पर्श भी नहीं किया है। आहाहा! यह दया, दान, व्रत के विकल्प राग हैं, वे ज्ञायक से अत्यन्त भिन्न हैं। आहाहा!

वह जब स्वभाव को देखने पर निर्मल दिखता है, विभाव को जरा देखने पर निर्मल और अनिर्मल दिखता है; अकेले विभाव को देखने पर अनिर्मल दिखता है। आहाहा! दूसरी बात तो यहाँ ली ही नहीं है। अमुक देखता है, भगवान को देखता है, अमुक देखता है। आहाहा! क्योंकि उस पर को नहीं देखता। देखता है अपने को। अपने ज्ञान-दर्शन को देखता है। पर को कब स्पर्श करता है? पर तो अत्यन्त भिन्न चीज़ है। जिसे जानता है, वह ज्ञात होता है, वह चीज़ तो आत्मा से अत्यन्त भिन्न है। आत्मा में ज्ञान होता है, वह तो आत्मा का अपना अपने में अपने लिये होता है। आहाहा! ऐसा तत्त्व, वीतरागतत्त्व आत्मा गहन है परन्तु निज ज्ञानरूपी। जिसे निज ज्ञान, हों! परमात्मा का वीतराग का ज्ञान, वह नहीं। परमेश्वर का ज्ञान, वह भी पर शब्द से शुभराग है। आहाहा! पाँच नमोकार का ज्ञान और उनका स्मरण, यह सब राग है; यह कोई धर्म-बर्म नहीं है। आहाहा! अब ऐसी बात! पूरी जिन्दगी निकाली हो साठ वर्ष और पचास वर्ष। उसे कहे कि राग धर्म नहीं है। शोर मचायेगा या नहीं? बापू! मार्ग ऐसा है, भाई! प्रभु! तूने मार्ग सुना नहीं है। आहाहा! तू दूसरे रास्ते चढ़ गया है। आहाहा! स्व का पन्थ जो अन्दर में जाना चाहिए, वह पंथ तूने छोड़ दिया। अकेले बाहर का राग पुण्य और पाप के भाव में तू चढ़ गया है। और वे मेरे हैं, (ऐसा) मानकर मिथ्यात्व में चढ़ गया है। आहाहा!

गहन है, वही निजज्ञानरूपी दीपक... जिसे अपना ज्ञानरूपी दीपक उघड़ा है। आहाहा! शास्त्रज्ञान और यह बात यहाँ नहीं की है। निजज्ञानरूपी दीपक। आहाहा! निज अर्थात् स्वयं आत्मा, उसका दीपकरूपी ज्ञान, वह जिसे प्रगट हुआ है। जिसने **पापतिमिर को नष्ट किया है,...** और पाप के अन्धकार का तो जिसने नाश कर डाला है। जहाँ सम्यग्ज्ञान का उजाला हुआ, सूरज का जहाँ उजाला हुआ, वहाँ अन्धकार रहता ही नहीं। सूरज का उजाला हो, वहाँ अन्धकार रहता ही नहीं। इसी प्रकार चैतन्य सम्यग्ज्ञान का उजाला हुआ, वहाँ अन्धकार नहीं रहता। आहाहा! ऐसी बातें, मार्ग ऐसा है, बापू! आहाहा!

निजज्ञानरूपी दीपक—कि जिसने पापतिमिर को नष्ट किया है, वह—सत्पुरुषों के हृदयकमलरूपी घर में निश्चलरूप से संस्थित है। सत्पुरुष, धर्मी जीव, समकिती के

हृदयकमल में, उनके हृदयकमलरूपी घर अन्दर का, उसमें निश्चलरूप से भगवान आत्मा विराजता है। आहाहा! बात-बात में अन्तर, शब्द-शब्द में अन्तर! वह सुना हो, उससे सब प्रकार ही अलग। अब कठिन पड़ता है। दुनिया की अन्दर की सब प्रकार की खबर है न! आहाहा! ऐसे **सत्पुरुषों के हृदयकमलरूपी घर में...** अर्थात् यहाँ ज्ञान में **निश्चलरूप से संस्थित...** आत्मा रहा हुआ है। ज्ञान की दशा में प्रभु रहा हुआ है। वह राग और पुण्य में यह आत्मा नहीं है। आहाहा! एक-एक लाईन भी ऐसी है।

मुमुक्षु : पापतिमिर तो आत्मा में नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : पाप और पुण्य दोनों नहीं।

मुमुक्षु : आत्मा में है ही नहीं, फिर नष्ट कैसे करे?

पूज्य गुरुदेवश्री : कहा नहीं कि है कहाँ? परन्तु पर्याय में था, उसका नाश किया, ऐसा कहा। पर्याय में है न? यह तो कहा न? अनिर्मल दिखता है न? जब तक वीतराग न हो, तब तक धर्मी को भी निर्मल आत्मा दिखता है और राग मलिन दिखता है, दोनों दिखते हैं। राग की अस्ति नहीं - ऐसा है? वस्तु में नहीं है परन्तु वस्तु पूर्ण प्रगट न हो, जब तक वीतराग न हो, तब तक निर्मलानन्द का भी भान है, वीतरागता भी है और साथ में राग भी है। यदि वीतरागता पूर्ण हो गयी हो तो राग नहीं हो सकता। आहाहा!

सर्वज्ञ परमेश्वर अरिहन्तदेव को वीतरागता पूर्ण हो गयी। वीतरागता बारहवें (गुणस्थान) में पूर्ण हो गयी, इसलिए तेरहवें (गुणस्थान) में तो केवलज्ञान हो जाता है। आहाहा! उन्हें राग होता नहीं परन्तु जिसे अभी वीतरागता पूर्ण नहीं हुई परन्तु साधकदशा में वर्तता है। आत्मा में निज सम्यग्ज्ञान वर्तता है, उसकी पूर्णता नहीं है; इसलिए उसे निर्मल और अनिर्मल दोनों भासित होते हैं। निश्चय और व्यवहार का दोनों का ज्ञान उसे यथार्थ है। आहाहा! पूरी दुनिया में पूरे दिन रचा-पचा, अब उसे यह बात... आहाहा! अरे रे! मरकर कहाँ जाना? बापू! देह तो छूट जाएगी। वह तो ५, १०, १५, २० वर्ष। ५०-५० वर्ष निकाले उन्हें फिर से पचास वर्ष निकलनेवाले नहीं हैं। यह देह तो छूट जाएगी, यह तो हड्डियाँ हैं। आत्मा चला जाएगा। सब प्रपंच करके पूरे दिन राग और द्वेष, कषाय, मान, माया, लोभ किये होंगे। आहाहा! माँस और शराब-बराब नहीं खाया (पीया) होगा, वे सब

मरकर पशु में जानेवाले हैं। बहुत से तिर्यंच भव में जानेवाले हैं। पशु-पशु। आहाहा! देव के लक्षण तो हैं नहीं, मनुष्य में जाने के लक्षण राग की मन्दता और कषाय की मन्दता। यह तो एक घण्टे जाकर सुने, फिर हो गया। तेईस घण्टे पाप पूरे दिन। यह ऐरण की चोरी और सुई का दान। आहाहा! उसकी गिनती क्या? वह तो कहीं दान चला गया।

मुमुक्षु : तो धन्धा छोड़ देना?

पूज्य गुरुदेवश्री : छोड़ता है कहाँ? कर कहाँ सकता है? करता है राग। राग करता है, उसे छोड़ने पर धन्धा छूट जाएगा। धन्धा यह कहाँ कर सकता है? धन्धा तो परवस्तु है। आहाहा! एक बार पालेज में हमारी दुकान पर... दुकान है न वहाँ? उस दुकान पर जहाँ बैठक है, वहाँ नागिन निकली। बैठक पर मेरे बड़े भाई बैठे हुए थे। उसमें नागिन निकली। वहीं निकली। स्वयं तो एकदम उठ गये। उसे कैसे बचाना? साथवाला वह बोहरा मुसलमान का एक घर था। उसने आकर मार डाला। आहाहा! इस धन्धे के रास्ते में भी... आहाहा! यह बैठक। जिस जगह पेढ़ी पर बैठने की गद्दी, व्यापार करने का, ठीक बराबर वहीं नागिन आयी।

अभी यहाँ नहीं नागिन ने काटा था, वहाँ हॉस्पीटल में। नागिन ऐसे... नाम अच्छा था। होगा कोई। वह ऐसे बैठा था। नागिन के ऊपर पैर आ गया और नागिन ने काट लिया तो तुरन्त मर गया। फिर मैंने पूछा था, नागिन का क्या हुआ? नागिन को बचाकर रखा। अब बेचारी के ऊपर पैर बहुत दब गया। फिर बचाकर जरा उपचार किया। जीवित रही है। वह मर गया। दूसरा होवे तो उसे मार डाले। कहा न वह बैठक में निकली, तो भाई तो उठकर गये तो साथवाले लोगों ने आकर मार डाला। यह देखो! आहाहा! पंचेन्द्रिय मारने का भी जिसे परिणाम का ठिकाना नहीं होता और एकेन्द्रिय जीव की दया कहाँ से लावे और एकेन्द्रिय की दया लावे तो भी वह राग है। एकेन्द्रिय की दया वह राग, हिंसा, आत्मा की हिंसा है। कठिन बात है, प्रभु! क्या करें? वीतराग का यह कथन है। तीन लोक के नाथ वीतराग ऐसा फरमाते हैं। जितना राग, उतनी तेरी हिंसा है। आहाहा! तो भी कहते हैं कि ज्ञानी को थोड़ा राग होता है। जानता है कि यह दुःख है, तथापि आदरणीय नहीं मानता। आहाहा! आदरणीय तो अन्दर चैतन्यमूर्ति भगवान स्वयं हीरा पड़ा है, उसमें से वीतरागता और केवलज्ञान आता है, उसे आदरणीय मानता है। यह गाथा पूरी हुई।

गाथा-१०१

एगो य मरदि जीवो एगो य जीवदि सयं।
एगस्स जादि मरणं एगो सिज्झदि णीरओ।।१०१।।

एकश्च म्रियते जीव: एकश्च जीवति स्वयम्।
एकस्य जायते मरणं एक: सिध्यति नीरजा:।।१०१।।

इह हि सन्सारावस्थायां मुक्तौ च नि:सहायो जीव इत्युक्त:। नित्यमरणे तद्भवमरणे च सहायमन्तरेण व्यवहारतश्चैक एव म्रियते; सादिसनिधनमूर्तिविजातीयविभावव्यञ्जननर-नारकादिपर्यायोत्पत्तौ चासन्नगतानुपचरितासद्भूतव्यवहारनयादेशेन स्वयमेवोज्जीवत्येव। सर्वैर्बन्धुभि: परिरक्ष्यमाणस्यापि महाबलपराक्रमस्यैकस्य जीवस्याप्रार्थितमपि स्वयमेव जायते मरणं; एक एव परमगुरुप्रसादासादितस्वात्माश्रयनिश्चयशुक्लध्यानबलेन स्वात्मानं ध्यात्वा नीरजा: सन् सद्यो निर्वाति।

तथा चोक्तं ह्न

(अनुष्टुप्)

स्वयं कर्म करोत्यात्मा स्वयं तत्फलमश्नुते।
स्वयं भ्रमति सन्सारे स्वयं तस्माद्विमुच्यते।।

उक्तञ्च श्री सोमदेवपण्डितदेवै: ह्न

(वसंततिलका)

एकस्त्व-माविशसि जन्मनि सङ्क्षये च,
भोक्तुं स्वयं स्वकृतकर्मफलानुबन्धम्।
अन्यो न जातु सुख-दु:ख-विधौ सहाय:,
स्वाजीवनाय मिलितं विटपेटकं ते।।

मरता अकेला जीव एवं जन्म एकाकी करे।
पाता अकेला ही मरण अरु मुक्ति एकाकी करे॥१०१॥

अन्वयार्थः [जीवः एकः च] जीव अकेला [म्रियते] मरता है [च] और [स्वयम् एकः] स्वयं अकेला [जीवति] जन्मता है; [एकस्य] अकेले का [मरणं जायते] मरण होता है और [एकः] अकेला [नीरजाः] रज रहित होता हुआ [सिध्यति] सिद्ध होता है।

टीका : यहाँ (-इस गाथा में), संसारावस्था में और मुक्ति में जीव निःसहाय है ऐसा कहा है।

नित्य मरण में (अर्थात् प्रति समय होनेवाले आयुकर्म के निषेकों के क्षय में) और उस भव सम्बन्धी मरण में, (अन्य किसी की) सहायता के बिना व्यवहार से (जीव) अकेला ही मरता है; तथा सादि-सांत मूर्तिक विजातीय विभावव्यंजनपर्यायरूप नरनारकादिपर्यायों की उत्पत्ति में, आसन्न-अनुपचरित-असद्भूत-व्यवहारनय के कथन से (जीव अकेला ही) स्वयमेव जन्मता है। सर्व बन्धुजनों से रक्षण किया जाने पर भी, महाबल-पराक्रमवाले जीव का अकेले का ही, अनिच्छित होने पर भी, स्वयमेव मरण होता है; (जीव) अकेला ही परम गुरु के प्रसाद से प्राप्त स्वात्माश्रित निश्चय शुक्लध्यान के बल से निज आत्मा को ध्याकर रजरहित होता हुआ शीघ्र निर्वाण प्राप्त करता है।

इसी प्रकार (अन्यत्र श्लोक द्वारा) कहा है कि:—

(वीरछन्द)

स्वयं कर्म करता यह आत्मा तत्फल भोगे वही स्वयं।
भ्रमता स्वयं महाभववन में, भव से होता मुक्त स्वयं॥

[श्लोकार्थः] आत्मा स्वयं कर्म करता है, स्वयं उसका फल भोगता है, स्वयं संसार में भ्रमता है तथा स्वयं संसार से मुक्त होता है।

और श्री सोमदेवपण्डितदेव ने (यशस्तिलकचंपूकाव्य में दूसरे अधिकार में एकत्वानुप्रेक्षा का वर्णन करते हुए ११९ वें श्लोक द्वारा) कहा है कि:—

(वीरछन्द)

स्वयं किये कर्मों का फल अनुबन्ध भोगने हेतु स्वयं।
करे प्रवेश अकेला जन्म-मरण में तू हे जीव स्वयं॥

विविध दुःख या सुख में तुझको बिलकुल नहीं सहाय स्वरूप।
निज जीवन के लिए मात्र यह टोली तुझे मिली ठगरूप॥

[श्लोकार्थः] स्वयं किये हुए कर्म के फलानुबन्ध को स्वयं भोगने के लिए तू अकेला जन्म में तथा मृत्यु में प्रवेश करता है, अन्य कोई (स्त्री-पुत्र-मित्रादिक) सुख-दुःख के प्रकारों में बिल्कुल सहायभूत नहीं होता; अपनी अजीविका के लिये (मात्र अपने स्वार्थ के लिये स्त्री-पुत्र-मित्रादिक) ठगों की टोली तुझे मिली है।

गाथा - १०१ पर प्रवचन

गाथा १०१। आहाहा! मूल गाथा।

एगो य मरदि जीवो एगो य जीवदि सयं।
एगस्स जादि मरणं एगो सिज्झदि णीरओ।।१०१।।

नीचे हरिगीत

मरता अकेला जीव एवं जन्म एकाकी करे।
पाता अकेला ही मरण अरु मुक्ति एकाकी करे॥१०१॥

आहाहा! **टीका : यहाँ (-इस गाथा में), संसारावस्था में और मुक्ति में जीव निःसहाय है, ऐसा कहा है।** संसार में भी किसी की सहायता नहीं है और मुक्ति में भी किसी की सहायता नहीं है। सब स्वतन्त्र है। आहाहा!

नित्य मरण में (अर्थात् प्रति समय होनेवाले आयुकर्म के निषेकों के क्षय में)... आहाहा! जो आयुष्य बाँधकर आया है, वह समय-समय घटता जाता है और समय-समय में आयुष्य का नाश होता जाता है। अविचिमरण कहते हैं। जो मरण की अवधि है, उसके निकट जाता है। वह अवधि कहीं बदले ऐसी नहीं है। जिस समय में, जिस क्षेत्र में, जिस देह में, जिस प्रकार से देह छूटनी है, उस क्षेत्र में, उस काल में बराबर छूटनी है। बड़ा डॉक्टर आवे या इन्द्र आवे तो भी बदले नहीं। आहाहा! उसका आयुष्य क्षण-क्षण में, पर्याय-पर्याय में क्षय होता है। आयुष्य है न, बाँधकर आया यह? समय-समय में आयुष्य कम होता जाता है, घटता जाता है। मरण के समीप जाता है।

जो **नित्य मरण में (अर्थात् प्रति समय होनेवाले आयुकर्म के निषेकों के क्षय में) और उस भव सम्बन्धी मरण में,...** आहाहा! इस देह छूटने के काल में, मरण में... आहाहा! **(अन्य किसी की) सहायता के बिना व्यवहार से (जीव) अकेला ही मरता है;...** व्यवहार से मरता है न? निश्चय से तो त्रिकाल है, वह है। त्रिकाली चैतन्य सदा आनन्दकन्द प्रभु है, उसका तो कभी नाश नहीं होता। देह छूटने के काल में सब स्त्री-पुत्र ऐसे सामने देखा करे। उस समय और वापिस पूछे। अब यहाँ मरने की तैयारी हो तो भी पूछे (कि) अब इसका क्या करना? अब परन्तु ठीक से मरने तो दे। हमने तो सब देखा है न? ९० के वर्ष में एक भाई वहाँ थे। क्या कहलाते हैं वे? जानवर को वह... मन्दिरवासी थे नहीं एक? राजकोट। गौशाला का नायक था। वह नायक नहीं। गौशाला में तो दूसरे थे। ये और दूसरे। यह तो दूसरे का ऊपरी था। उसे पूछकर करे। मारना हो, कसाईखाने ले जाना हो तो। बनिया, मन्दिरमार्गी था। हम वहाँ थे इसलिए... ९० के वर्ष की बात है। महाराज को बुलाओ दर्शन करने को। बेचारे की आँख में आँसू बहते चले जाएँ और दुःख... दुःख... दुःख... दुःख... ऊपर स्त्री पूछने को बैठी थी। निश्चित हो गया था कि देह अब छूट जाएगी।

मुमुक्षु : म्युनिसिपलटी का सेक्रेटरी...

पूज्य गुरुदेवश्री : सेक्रेटरी। किसका कहा? म्युनिसिपलटी का सेक्रेटरी।

मुमुक्षु : गाँव में गये थे।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह। म्युनिसिपलटी का सेक्रेटरी था। यह तो ९० के वर्ष की बात है। ऐसे मैं गया, वहाँ स्त्री ऊपर बैठकर पूछताछ करती है। अरे! कहा क्या करते हो तुम यह? यह तैयारी हो गयी है और तुम इसे वहाँ रोकते हो। उसमें पोर्टर आया, नौकर लेकर कि आज रावसाहेब की पदवी सरकार देती है। मैं वहाँ था, हों! वहाँ एक पोर्टर सरकार का व्यक्ति। रावसाहेब की पदवी दे। यहाँ मरना है। आहाहा! तेरे रावसाहेब और फावसाहेब। जहाँ मैं उपाश्रय गया, वहाँ खबर पड़ी कि रात्रि में मर गया। दोनों आँखों में से आँसू बह रहे थे। कहीं विवाह में गया था वहाँ मैसूरपाक और मीठा खाया हुआ था, इसलिए ये सब उलझ गया। ऐसे करते-करते श्वास चले, बड़ा लट्ठ जैसा शरीर था। शरीर मजबूत था। मन्दिरमार्गी श्वेताम्बर। वैसे तो सबको प्रेम था न, इसलिए महाराज के दर्शन

करने और मांगलिक सुनने को। वह तो दोनों आँखों से रोवे और वह स्त्री पूछे कि इसका क्या करना ? भाई! यह अब जाता है। तुम यह क्या करते हो ? यह जाता है। वहाँ पोर्टर आया कि रावसाहेब का इलकाव देना है। मर गया। अभी देह छूट जाएगी। किसका इलकाव किसे यह देना है ? अरे! दुनिया पागल, पागल दुनिया। कुछ भान नहीं होता। क्या करते हैं और कहाँ जाएँगे यहाँ से ? देह तो अवश्य छूटेगी, आत्मा तो अनादि-अनन्त है, वह यहाँ से कहाँ जाएगा ? आहाहा! पुण्य के ऐसे परिणाम किये हों। कुछ ठीक दो-चार घण्टे सत्समागम, दो-चार घण्टे दया, दान, भक्ति, पूजा, तब तो फिर पुण्य भी हो। वह भी नहीं। एकाध घण्टे गया हो और तेईस घण्टे पाप के, अब मरकर पशु में जाना। उसे दूसरी गति नहीं होती। मरकर पशु होगा। भले करोड़पति या अरबोंपति हो। आहाहा!

यह यहाँ कहते हैं। **(आयुकर्म के निषेकों के क्षय में) और उस भव सम्बन्धी मरण में,...** उस भव सम्बन्धी। दूसरे भव में दूसरा। **उस भव सम्बन्धी मरण में, (अन्य किसी की) सहायता के बिना...** कोई मदद नहीं करता, कोई सामने नहीं देखता। आहाहा! स्त्री टकटक देखे, लड़के रोते हों, उसको दो... श्वास चलता हो। नानालालभाई का भतीजा था और एक भाई था। नानालाल कालीदास राजकोट, करोड़पति, उसके काका का लड़का पूंजाभाई था, वह उसके काका का लड़का था। क्या नाम था, भूल गया। अमुलखभाई। उनकी अन्तिम स्थिति हुई और पूरा परिवार इकट्ठा हुआ। सब करोड़पति गृहस्थ। कहे, महाराज को बुलाओ मांगलिक सुनाने के लिये। वह भी ९० वर्ष की बात है। यह घर भरा हुआ। नानालालभाई और बेचरभाई तथा मोहनभाई सब थे। राजकोटवाले सब करोड़पति। सब कुटुम्ब इकट्ठा हुआ था। उसे दोनों आँखों में से आँसू बह रहे थे। यह सहन नहीं होता। यह सब पकड़ा गया है, ऐसे करे वहाँ अन्दर से चिल्लाहट मचाये। बड़े करोड़पति भाई थे। आहाहा! हाथ में मौसम्बी कुछ दी और महाराज को पड़गाहो परन्तु हाथ थी काँपते थे, आँख में आँसू, सब बैठे थे। देह छूट गयी। अकेला मरता है और अकेला जीता है, बापू! कौन तेरा सहायक है ? आहाहा! जिसके लिये तूने पूरी जिन्दगी पाप किये, वे भी मरते समय सामने देखते रहेंगे। कोई सहायक हों, ऐसा वहाँ नहीं है। आहाहा!

(अन्य किसी की) सहायता के बिना व्यवहार से (जीव) अकेला ही मरता

है;... आहाहा! देह छूट जाती है। देह जड़-मिट्टी है। वह कहाँ आत्मा है? वह तो धूल है। धूल की स्थिति है। वह स्थिति जिस समय में, जिस क्षेत्र में, जिस काल में, जिस संयोग में छूटना है, वह छूटेगी। केवली के ज्ञान में आया है कि इस जगह है, इस प्रमाण इसका इतना आयुष्य होगा। आहाहा! कौन कहता है मरण में सहायक है? आहाहा! **सहायता के बिना व्यवहार से (जीव) अकेला ही मरता है; तथा सादि-सांत मूर्तिक विजातीय विभावव्यंजनपर्यायरूप नरनारकादिपर्यायों की उत्पत्ति में, आसन्न-अनुपचरित-असद्भूत-व्यवहारनय के कथन से (जीव अकेला ही) स्वयमेव जन्मता है।** कहीं से आकर अकेला जन्मता है। आहाहा! ढोर में से आवे, थोर में से आवे। ऐसे भाव हों, वहाँ से आवे और अकेला आकर जन्मे। आहाहा! जन्मे जहाँ बाहर आवे, पहले आँख खोले नहीं। देखा है? बालक जन्मता है, तब पहले आँख नहीं खोलता। पहले ऊंआं करे.. ऊंआं... रोने लगता है। बाहर जन्मे तब रोने लगता है। अभी उसकी माँ को खबर नहीं पड़े कि यह लड़का-लड़की है, वहाँ तो रोने लगता है। आँख बन्द होती है। यह स्थिति! अकेला जन्मता है और अकेला मरता है। तुझे कोई सहायक नहीं है, बापू! आहाहा! जगत को कठिन पड़ता है। आहाहा!

सादि-सान्त समझ में आया? इस शरीर की उत्पत्ति है न? इस उत्पत्ति का फिर अन्त है। सादि-सान्त है। शरीर की उत्पत्ति है, वह शुरुआत है। **सादि-सांत मूर्तिक विजातीय विभावव्यंजनपर्यायरूप नरनारकादिपर्यायों की...** नर-मनुष्य हो, कोई नारकी हो, कोई देव हो... आहाहा! और कोई देव हो, मनुष्य हो। उस **उत्पत्ति में, आसन्न-अनुपचरित-असद्भूत-व्यवहारनय के कथन से (जीव अकेला ही) स्वयमेव जन्मता है।** आहाहा! कोई सामने देखनेवाला नहीं होता। वहाँ से जो परिणाम लेकर आया। थोर में हो, एकेन्द्रिय में कहीं हो, वहाँ से मरकर अकेला जन्मता है। यह बाँधा हुआ जो कर्म है। है न? जन्म में कोई सहायक होगा। यहाँ भले जन्म हो और फिर गाँव में लाखों के पेड़ा बाँटे परन्तु वह अकेला जन्मा, वहाँ ऊंआं.. ऊंआं... आहाहा! ऐसे भव किये हैं, बापू! आहाहा! चलता है एकदम। अकेला मरता है और अकेला जन्मता है। जन्मने और मरने के समय कोई सहायक नहीं होता। आहाहा!

हमारे यहाँ एक बार एक प्रश्न हुआ था। ८६ का चातुर्मास अमरेली में किया था न?

अमरेली से उठकर चीत्तल गये, चीत्तल। ८६ की बात है। उसमें चीत्तल में बाघेर है न? चीत्तल में बाघेर लोग। सब गृहस्थ।

मुमुक्षु : बहुत परिवार....

पूज्य गुरुदेवश्री : बहुत परिवार। १९ घर हैं। सब पैसेवाले हैं और (हम) गये, वहाँ हमारा मनसुख आया, आनन्द आया था, आणन्दजी। हमारे पालेज की दुकान से आया था। सगाई करने मनसुख का। वहाँ लालचन्दभाई थे बाघेर। सब गृहस्थ पैसेवाले। लाखोंपति उस समय, हों! फिर उन्होंने मुझसे प्रश्न किया वह हमारा आणन्दजी सगाई करने आया था। हमारा भागीदार था न वहाँ? यह तो ८७ की बात है। आहाहा! ८७ के (वर्ष) की बात है। (प्रश्न किया) कि यह क्या बनता होगा? कहा, एक आवे थोर में से और एक आवे दो इन्द्रिय में से। वे यहाँ फिर पति-पत्नी हों। वहाँ कहीं किसी का मेल नहीं है। आहाहा!

इस प्रकार का द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव का योग। परन्तु एक आवे थोर में से और एक आवे लट में से। यहाँ हो पति-पत्नी। आहाहा! वापस एक मरकर कहीं जाए और एक मरकर कहीं जाए। कौन सामने देखे? बापू! हमारा आणन्दजी था न? उसने तब प्रश्न किया था। वह भी मर गया, सब मर गये। आहाहा! बहुत वर्ष की बात है। आहाहा! जन्म में **स्वयमेव जन्मता है।** विजातीय बड़ी विभाव की पर्यायें। यह शरीर विजातीय है न? मूर्तिक है। यह नरनारकादि पर्याय की उत्पत्ति में इस नजदीक के **अनुपचरित-असद्भूत-व्यवहारनय के कथन से (जीव अकेला ही) स्वयमेव जन्मता है।** आहाहा! **सर्व बन्धुजनों से रक्षण किया जाने पर भी, महाबल-पराक्रमवाले जीव का अकेले का ही, अनिच्छित होने पर भी, स्वयमेव मरण होता है;...** आहाहा! **सर्व बन्धुजनों से रक्षण किया जाने पर भी, महाबल-पराक्रमवाले जीव का...** महाबल और पराक्रमवाला भगवान अन्दर है। आहाहा! अनन्त-अनन्त वीर्य, अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्द से भरपूर भगवान। आहाहा! तू भगवान है, प्रभु! तुझे खबर नहीं। परमेश्वर है, भगवान है। भगवान और परमेश्वर न हो तो तेरी पर्याय में परमेश्वर कहाँ से आयेगा? परमेश्वर केवली होगा, वह आयेगा कहाँ से? बाहर से आवे ऐसा है? अन्दर में भरा हुआ, अन्दर विद्यमान है। आहाहा! इसकी कहाँ खबर है? परमेश्वर क्या और... आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं **महाबल-पराक्रमवाले जीव का...** आहाहा! **अकेले का ही,**

अनिच्छित होने पर भी,... उसे कुछ मरने की इच्छा है ? **स्वयमेव मरण होता है;...** देह छूट जाती है। सब टकटक देखें। 'खड़ी नारी रे तेरी कामिनी, टकटक देखे अरे देह में अब कुछ नहीं। ऐसे सुबक-सुबक कर रोवे।' आहाहा! 'अन्तकाल में तेरा कोई नहीं।' आहाहा! तेरे मरण को देखकर तेरी स्त्री सुबककर रोवे। अरेरे! इस देह में अब कुछ नहीं है। यह देह चली जाएगी, यह क्या है ? इसकी स्थिति प्रमाण रहे और इसकी स्थिति प्रमाण जन्मता है। कोई दूसरे की सहायता-मदद है नहीं। आहाहा! कठिन काम है।

(जीव) अकेला ही परम गुरु के प्रसाद से... आहाहा! अब सुलटा लेते हैं। **अकेला ही परम गुरु के प्रसाद से प्राप्त स्वात्माश्रित निश्चय शुक्लध्यान के बल से...** आहाहा! इसे गुरु का उपदेश मिला, प्रभु! तू आत्मा आनन्दकन्द है। तू चैतन्यरत्न है। तेरे जैसी तीन लोक में कोई चीज़ नहीं है। आहाहा! ऐसा इसे उपदेश मिला, उसके कारण उसके बल से। आहाहा! है न ? **परम गुरु के प्रसाद से...** यह निमित्त से बात है न ? **प्राप्त स्वात्माश्रित...** गुरु ने कहा क्या ? कि स्व आत्मा तेरा अन्दर भगवान है, वहाँ देख, उसका आश्रय ले। तू णमो अरिहन्ताणं... णमो अरिहन्ताणं... णमो अरिहन्ताणं... करेगा, वह तो राग होगा। उसमें कुछ तुझे सुधार-बुधार नहीं होगा। पाँच नवकार गिनो। नवकार गिने, वह राग है। आहाहा!

स्वात्माश्रित... ऐसा लिया। देखा ? गुरु ने इसे यह कहा है। आहाहा! परम गुरु के उपदेश से। गुरु उन्हें कहते हैं, कहते हैं कि जो स्व आत्मा का आश्रय बतावे। आहाहा! है ? **अकेला ही परम गुरु के प्रसाद से प्राप्त स्वात्माश्रित...** आत्मा के आश्रित निश्चय शुक्लध्यान। आहाहा! इस पंचम काल में नहीं है, तो भी ऐसी बात करते हैं। फिर भविष्य के भव में शुक्लध्यान करके मोक्ष जाएगा। आहाहा! इस भव में जिसने समकित होकर आराधन किया है, आत्मा का ज्ञान और अनुभव किया है, उसे भविष्य में शुक्लध्यान होगा और मोक्ष जाएगा। आहाहा!

निश्चय शुक्लध्यान के बल से निज आत्मा को ध्याकर... आहाहा! **रजरहित होता हुआ शीघ्र निर्वाण प्राप्त करता है।** मरण में अकेला, जन्म में अकेला, मोक्ष में अकेला - सर्वत्र अकेला है, कहते हैं। कोई साथ आवे, ऐसा नहीं है। थोड़ा पुण्य किया होगा तो उस पुण्य के परमाणु बँधे हुए हैं, वे परमाणु में पड़े हैं। उनमें कुछ तेरा भाव नहीं

है। आहाहा! कोई शरण नहीं। शरण चैतन्यमूर्ति है। यह कल आया था न! अरिहन्ता शरणम्, सिद्धा शरणम् - यह नहीं। यह तो व्यवहार है, राग है। मांगलिक में आता है न? अरिहन्ता शरणम्, सिद्धा शरणम्, साहू शरणम्, केवलीपण्णत्तो धम्मो शरणम्, यह तो राग है। कल आया था। आत्मा अन्दर शरण है। परद्रव्य के साथ कुछ भी सम्बन्ध है, वह राग है। अरिहन्त को याद करे और अरिहन्त का स्मरण करे तो वह राग है; उसमें धर्म-फर्म है नहीं। आहाहा!

इसलिए यहाँ कहा **स्वात्माश्रित...** अपना जो आत्मा है, उसके आश्रित। **निश्चय शुक्लध्यान...** होता है। यह तो मोक्ष लेना है न? **निश्चय शुक्लध्यान के बल से...** शरीर का संहनन और बल तथा वज्रनाराचसंहनन और उसके बल से नहीं। आहाहा! केवलज्ञान प्राप्त करता है, उसे वज्रनाराचसंहनन होता है। हो, उसके बल से केवल (ज्ञान) नहीं होता। आत्मा के आश्रय से होता है। प्रभु पूर्णानन्द का नाथ अन्दर विराजता है, उसका आश्रय लेने पर उसे समकित होता है, उसका आश्रय लेने पर उसे चारित्र होता है, उसका आश्रय लेने पर उसे निश्चल शुक्लध्यान होता है और उसका आश्रय पूर्ण होने पर केवलज्ञान होता है। आहाहा! भगवान आत्मा के अतिरिक्त परद्रव्य के आश्रय में राग है। आहाहा!

निज आत्मा को ध्याकर... देखा? अपने आत्मा का ध्यान करके, ऐसा कहा। णमो अरिहन्ताणं, णमो सिद्धाणं भगवान का ध्यान करना - ऐसा नहीं कहा। भगवान का स्मरण करे, वह राग है। परमेश्वर परद्रव्य है। आहाहा! **निज आत्मा को ध्याकर रजरहित होता हुआ...** आहाहा! **शीघ्र निर्वाण प्राप्त करता है।** आहाहा! इस प्रकार अकेला मरता है, अकेला जन्मता है, अकेला मोक्ष में जाता है। कोई सहायक नहीं है। आहाहा! अकेले बुरे परिणाम किये हों, स्त्री-पुत्र-धन्धे के लिये, भोगना स्वयं को। वह नरक और पशु में जाकर। आहाहा! अकेला भोगना और अकेला करना, ऐसा कहते हैं। इसलिए आत्मा का आश्रय ले और अन्दर धर्मध्यान ले तो उसमें से धीरे-धीरे मुक्ति होगी।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)